[सूक्त-११५]

[ऋषि—कुत्स आङ्गिरस। देवता—सूर्य। छन्द—त्रिष्टुप्।]

१२६७. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।१।।

देव जनों या रश्मियों का समूहरूप तथा आश्चर्यकर सूर्यमण्डल उदयाचल को प्राप्त था। जो मित्र, वरुण तथा अग्नि देवों से उपलक्षित सम्पूर्ण जगत का प्रकाशक या चक्षुस्थानीय है। उदय को प्राप्त होकर सूर्यदेव ने अपने तेज से द्यु, पृथिवी और अन्तरिक्ष लोक को चारों ओर से व्याप्त कर लिया है। ऐसे मण्डलान्तर्वर्ती सूर्यदेव या अन्तर्यामी होने से सर्वप्रेरक परमात्मा जंगम और स्थावर दोनों के स्वरूपभूत हैं।

पाठ में दिए गए चक्षुष् का अर्थ सुसंस्कृत करने वाला हो सकता है। मित्र, वरुण और अग्नि को विश्व या ऋतु का प्रतिरूप कहा जाता है। सम्भवतः विश्व और ऋतुओं के अधिष्ठाता होने के कारण उन्हें ऐसा कहा गया है। **अनीकं**—समूहरूप; **चित्रं**—आश्चर्यकर; **तस्थुषः**—स्थावर, ''योऽसौ तपन्नुदेति स सर्वेषां भूतानां प्राणानादायोदेति'' (तै. आ. १.१४.१)। **आत्मा जगतः**— (विश्वात्मा) सभी वस्तुओं में व्याप्त और उन्हें जीवन्त बनाने वाली होने के कारण, 'जगतः' का अर्थ ''जंगम है''। इस शब्द के बाद 'तस्थुषः' शब्द आया है। इसका अर्थ है— जिसको स्थिर किया जाता है। स्थावर या जंगम सभी प्रकार के परिणामों का कारण सूर्य है। (स हि सर्वस्य स्थावरजंगमात्मकस्य कार्यवर्गस्य कारणम्)।

१२६८. सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्।।२।।

सूर्यदेव, दानादिगुणयुक्त तथा दीप्यमान उषा देवी के प्रादुर्भाव के अनन्तर आते हैं, जैसे कोई मनुष्य शोभन अवयव वाली युवती स्त्री का सतत अनुसरण करता है। जिस उषा के उत्पन्न होने पर, द्योतमान सूर्य के लिए यागेच्छुक यज्ञ के नेता यजमान दर्शपूर्णमासादि विहित अग्निहोत्रादि कर्मों का विस्तार करते हैं या देवयागार्थ धनाभिलाषी यजमान हलों को कर्षणार्थ प्रसारित करते हैं। एवंविध कल्याणकारक सूर्यदेव की

कल्याणरूप कर्मफल के लिए हम स्तुति करते हैं अथवा देवकामी यजमान पत्नी के सहित कल्याणकारक अग्निहोत्रादि कर्म को तत्फलार्थ प्रत्येक उषःकाल के प्रवृत्त होने पर विस्तारित करते हैं।

देवयन्तः—देवकामी; **युगानि**– इसका अर्थ हल में प्रयुक्त होने वाला जुआ भी हो सकता है। इस ऋतु (ऊषा) में कृषि उपज अच्छी होने की धारणा बनाकर लोग देवताओं को प्रसन्न करते हैं। बैलों के कंधे में जुआ (yokes for ploughs) रखते हैं या खेतों में हल चलाना आरंभ करते हैं। **युग्मित होकर**; "युगशब्दः कालवाची"।

१२६९. भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।

नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥३॥

व्यापनशील, रस या जल हरण करने वाली, विचित्र अवयव वाली और अनुक्रम से सभी द्वारा स्तुत्य एवंभूत सूर्यरश्मियाँ या घोड़े हमारे द्वारा पूजित होकर अन्तरिक्ष के पूर्वभाग में या नभःस्थलों में व्याप्त हो रही हैं तथा व्याप्त होकर शीघ्र ही चारों ओर व्याप्त हो जाती हैं।

हरितः—जल हरण करने वाली; **एतग्वाः**—"एतमेतव्यं प्रति ग्वो गमनं येषां ते तथोक्ताः"; **अनुमाद्यासः**—आनंदप्रद या स्तुत।

१२७०. तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।

यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥४॥

सर्वप्रेरक आदित्यदेव का वह ईश्वरत्व या स्वातंत्र्य ही है और माहात्म्य ही है, जो प्रारब्ध कृषि आदि कर्म के समाप्त न होने पर ही उस कर्म में विस्तीर्ण अपने रश्मिजाल को वह सूर्यदेव अस्त होते हुए अपने में समेट लेते हैं। जिस समय रसहरणशील अपनी रश्मियों या अपने हरिद्वर्ण अश्वों को वे पार्थिव लोक से ले जाकर अन्यत्र संयुक्त करते हैं या जब वे अपने घोड़ों को रथ से अलग करते हैं; तभी रात्रि, आच्छादक तम को सारे संसार पर फैला देती है।

कर्तोः—"कर्मनामैतत्"; **मध्या**—अपरिसमाप्त; सूर्यास्त होने पर कृषक या कारीगर कार्य के अधूरा रहने पर भी उसको रोक देता है। **अयुक्त**– छोड़ते हैं या अन्यत्र संयुक्त करते हैं; **सधस्थात्**—"सहस्थान्त अस्मात् पार्थिवल्लोकात्" या "सह तिष्ठन्त्यस्मिन्निति सधस्थो रथः"; **सिमस्मै**—"सर्वशब्द पर्यायः"; **वासः**—आच्छादक तम। "तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्ये यत्कर्मणां क्रियमाणानां विततं संह्रियते यदासौ अयुक्त हरणानादित्यरश्मीन् हरितोऽश्वानिति वाथ रात्री वासस्तनुते सिमस्मै वासरमहरवयुवती सर्वस्मात् (नि. ४.११)।

१२७१. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।

अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥५॥

उदय के समय, मित्र और वरुण द्वारा उपलक्षित सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशनार्थ आकाश के मध्य में सर्वप्रेरक सविता देव सबके निरूपक तेज को करते हैं तथा इस सूर्य की रसहरणशील रश्मियाँ (या हरिद्वर्ण अश्व), अवसानरहित, श्वेतवर्ण के तथा अन्धकार-निवारण में समर्थ अपने बलयुक्त विलक्षण तेज को अपने आगमन के साथ ही निष्पादित करते हैं तथा अपने जाने के समय रात्रि में कृष्णवर्ण को निष्पादित करती हैं।

अभिचक्षे—प्रकाशनार्थ; **रूपं**—तेज; **उपस्थे**—मध्य में; **पाजः**—"बल नामैतत्"; **रुशत्**—दीप्यमान; **हरितः**—जलहरणशील रश्मियाँ।

१२७२. अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।

तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।।६।।

हे द्योतमान सूर्य-रश्मियों! आज इस काल में आदित्य के उदय होने फैलने वाली आप हमें पापों से बचाइए। जो हमारे द्वारा प्रार्थित है, उसे मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यु आदि देव पूजित करें।

नि: **पिपृत**—रक्षा करें; **मामहन्ताम्**—अनुमोदन करें, पूजित करें।